अध्ययन सामग्री

विषय – हिन्दी
वर्ग – स्नातकोत्तर
सेमेस्टर – IV
प्रश्नपत्र – चतुर्दश XIV

सुमन कुमारी
सहायक प्राध्यापक
हिन्दी विभाग
हरप्रसाद दास जैन महाविद्यालय, आरा

30-07-2020

'रस निष्पत्ति'

Date : / /

रस निष्पत्ति के सम्बन्ध में प्रमुख आचार्यों के मतों को लिखें

उ- रस-निष्पत्ति' का तात्पर्य है- रस की प्रतीति, प्राप्ति या अनुभूति की सघनता की प्रक्रिया। सर्वप्रथम आचार्य भरत ने रस सूत्र का प्रवर्तन किया। उन्होंने इस सूत्र के माध्यम से समझाया कि विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के सहयोग से रस निष्पन्न होता है। यही रस निष्पत्ति विषयक सूत्र भरत और परवर्ती आचार्यों के चिंतन, विश्लेषण और मनन का विषय रहा है। भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक और अभिनवगुप्त जैसे आचार्यों ने रस-निष्पत्ति और उससे संबंधित सूत्र पर विचार किया है।

इन प्रमुख आचार्यों द्वारा प्रतिपादित रस निष्पत्ति विषयक मत निम्न हैं -

भट्टलोल्लट का मत :- इनके द्वारा दी गई रस सूत्र की व्याख्या 'उत्पतिवाद' के नाम से प्रसिद्ध है। उन्होंने संयोग का अर्थ 'कार्यकरण संबंध' और निष्पत्ति का अर्थ 'उत्पत्ति' किया है। उनके अनुसार स्थायी भाव रस का कार्यरूप है और विभाव आदि उसके कारण हैं। स्थायी भाव आलंबन द्वारा उत्पन्न होकर उद्दीपन आदि से उद्दीप्त होकर संचारी द्वारा पुष्ट होकर रसरूप में रहता है। भट्टलोल्लट का मानना था कि रस के स्थायी भाव की उत्पत्ति होती है। इस कारण इनके मत को 'उत्पत्तिवाद' कहा जाता है। भट्टलोल्लट के अनुसार रस की स्थिति मूल पात्र में होती है। नाटक में नट / अभिनेता उनके भावों का अनुकरण करता है। नट की कुशलता इसी अनुकरण में होती है और प्रेक्षक नट की इसी कुशलता से चमत्कृत होकर आनंद प्राप्त करता है।

शंकुक का मत :- आचार्य शंकुक न्याय दर्शन के

Scanned with CamScanner

अनुयायी होने के कारण भरतमुनि के रस सूत्र की की व्याख्या न्यायिक दृष्टिकोण से की। उन्होंने संयोग का अर्थ अनुमाप्य - अनुमापक संबंध ग्रहण किया और निष्पत्ति का अर्थ अनुमिति। इस कारण शंकुक का मत 'अनुमितिवाद' कहलाया। उनके अनुसार काव्यों के अनुशीलन से तथा शिक्षा के अभ्यास से सिद्ध किए हुए अपने कार्य से नट के ही प्रकाशित किये जाने वाले कृत्रिम होने पर भी कृत्रिम न समझे जानेवाले विभाव आदि शब्द से व्यवहृत होने वाले कारण, कार्य और और सहकारियों के संयोग भावरूप संबंध से अनुमीयमान होने पर भी वस्तु के सौन्दर्य के कारण तथा आस्वाद का विषय होने से अन्य अनुमीयमान अर्थों से विलक्षण स्थायी रूप से संभाव्यमान रति आदिभाव वहाँ न रहते हुए भी सामाजिक संस्कारों से आस्वाद किया हुआ 'रस' कहलाता है। इस तरह यह विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का अभिनय इतनी कुशलता से करता है कि वे कृत्रिम होते हुए भी कृत्रिम प्रतीत नहीं होते, वरन् वास्तविक जान पड़ते हैं।

भट्टनायक का मत :- भट्टनायक ने भरतमुनि के रस सूत्र की जो व्याख्या की है वह 'अभिनव भारती में' है। इनके अनुसार रस न तो प्रतीत होता है और न ही उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त रस अभिव्यक्त भी नहीं होता। यदि इसकी प्रतीति निजी व्यक्तिबद्ध भावानुभूति मानी जाए तो करुण रस में दुखानुभूति होनी चाहिए। उस प्रतीति को व्यक्तिबद्ध मानना अयुक्त है, क्योंकि सीतादि के दर्शन के निजी विभाव नहीं हो सकते हैं और न उस समय अपनी पत्नी की स्मृति हो सकती है। विभावों के देवतादि अलौकिक होने के कारण और समुद्रलंघन जैसे विकट असाधारण होने

के कारण उनका निजी रूप में साधारणीकरण नहीं हैं। भट्टनायक के अनुसार ऐसी प्रतीति अयुक्त है। शक्ति रूप से पूर्वस्थिति रस के पश्चात् अभिव्यक्ति मानने से विषय-ज्ञान के तारतम्य की आपत्ति उत्पन्न हो जाएगी। स्वगत अभिव्यक्ति और परगत अभिव्यक्ति के साथ भी यही हैं। भट्टनायक के अनुसार इनकी तो मुक्ति ही होती हैं। इस कारण यह मत मुक्तिवाद कहलाता हैं। इस मुक्ति की प्रक्रिया में तीन व्यवहार सहायता करते हैं— अभिधा, भावकत्व और भोजकत्व।

अभिनवगुप्त का मत :— भरतमुनि के रस सूत्र को लेकर अभिनवगुप्त द्वारा प्रस्तुत किया गया मत 'अभिव्यक्तिवाद' कहलाया। अभिनवगुप्त का मत शैव दृष्टिकोण से रस-निष्पत्ति की व्याख्या करता हैं। उनका मानना था कि रसास्वाद के लिए जहाँ वासना रूप से संस्थापित भावों की जागृति आवश्यक हैं, वहाँ एक ओर समाज का काव्यानुशीलनशाली, अनुभवी और प्रभावशाली हृदय होना भी अनावश्यक हैं। दूसरी ओर इस बात की परम आवश्यकता हैं कि कवि या सहृदय के अपने कारण से कोई विघ्न इसी बीच उपस्थित न हो जाए। जब तक समाज का हृदय वीतविघ्न स्थिति में नहीं पहुँचेगा तब तक रसास्वाद की कल्पना असंभव हैं।

उपर्युक्त रस-निष्पत्ति के सभी मतों में अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद ही सर्वाधिक मान्य और प्रधान हैं। इसी को लक्ष्य करके रस की मीमांसा होती रही हैं।